# शंकर शतक

श्रीनंदलाल माथुर

श्री

# शंकर-शतक

[ शिव-सेवक-समस्त-हेतु, भव-सिंधु-सेतु सम ]
[ सुगम सुहाया है। ]

लेखक—

श्रीनंदलाल माथुर, कुचेरा ग्राम (जोधपुर) वासी

[ कविवर ने बनाया है। ]

संपादक—

साहित्यानुरागी श्रीशिवकुमार केडिया

[ 'कुमार' ने सनेह से सजाया है। ]
[ पुण्य की पिपासा से ]

प्रकाशक—

श्रीरामरत्न-पुस्तक-भवन, काशी

[ ने इसे छपाया है। ]

प्रथम वार २००० ] भारतेंदु-जयंती सं० १९९० [ मूल्य पाँच आने।

शंकर-शतक

श्रीपंचमुख शंकर

GITA PRESS, GORAKHPUR.
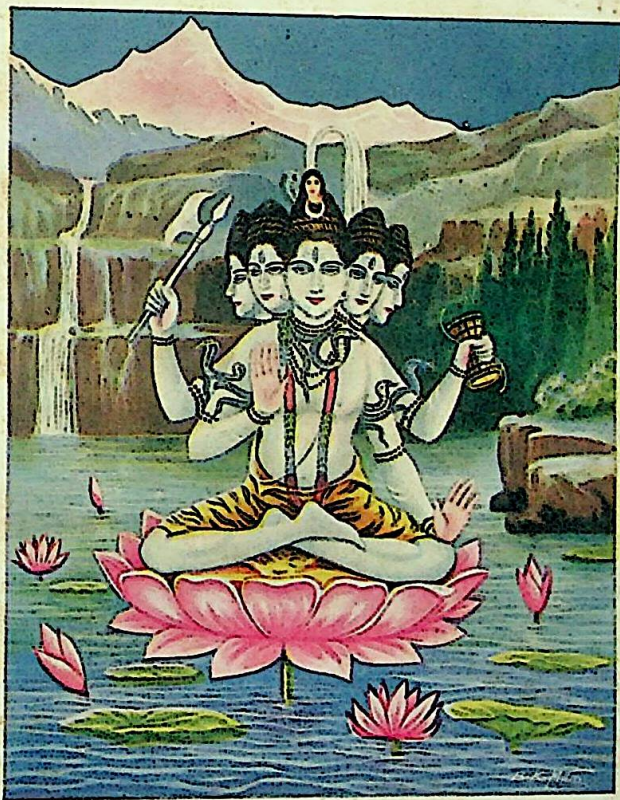
# श्रीगणेश

'गजमुख गनपति गौरि-सुत, मंगलमय मुद-मूल।
भव-नंदन अनुकूल है, हरहु सकल भव-सूल॥'

हम लोगों ने पूज्य-पाद स्वर्गीय रायसाहब श्रीराम-रत्नदासजी केडिया की पुण्य-स्मृति में श्रीरामरत्न-पुस्तक-भवन की स्थापना की है। इसकी स्थापना का उद्देश्य साहित्य और समाज की सेवा करना है। इसमें पाँच विभाग रखे गए हैं—(१) पुस्तक-विभाग (हस्तलिखित और मुद्रित)। (२) पत्र-पत्रिका-विभाग। (३) चित्र-विभाग (४) संग्रह-विभाग (प्राचीन और अर्वाचीन विचित्र वस्तुओं का संकलन)। (५) प्रकाशन-विभाग। अब तक अन्य विभागों में तो बहुत कुछ सामग्री संकलित की जा चुकी है, पर प्रकाशन-विभाग का श्रीगणेश इस 'शंकर-शतक' से हो रहा है।

यद्यपि हम लोगों ने इस पुस्तक को सर्वांग-सुंदर बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया है, तथापि यह पाठकों के लिये कितनी रुचिकर सिद्ध होगी, इसका निर्णय करना हमारा काम नहीं है। इस छोटी सी पुस्तिका को देखकर पाठकों को चकपकाना नहीं चाहिए, हमने 'स्वल्पारंभा क्षेमकरा भवंति' के सिद्धांत को सामने रखकर प्रकाशन का कार्य आरंभ कर दिया है। इस प्रकाशन में हमारा उद्देश्य व्यापारिक

नहीं है। हम प्रचार के उद्देश्य से सस्ते मूल्य में उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित करके साहित्य की सेवा करना चाहते हैं। यदि भगवान् शंकर का अनुग्रह हुआ और पाठकों ने हमारा उत्साह बढ़ाया तो हमें आशा है कि हम आगे चलकर विस्तृत रूप में इस कार्य को करने में समर्थ हो सकेंगे।

इस पुस्तक को अपना अमूल्य समय लगाकर जिस प्रेम और परिश्रम के साथ श्रीशिवकुमारजी केडिया 'कुमार' ने संपादित किया है, उसके लिये हम उनको हृदय से धन्यवाद देते हैं।

हम लोगों से जैसा कुछ बन पड़ा, पाठकों के सामने प्रस्तुत कर दिया है। अब इसको अपनाना उनका काम है।

भारतेंदु-जयंती सं० १९९०
श्रीरामरत्न-पुस्तक-भवन,
काशी।

विद्वद्विधेय—
मुरारीलाल केडिया
पुरुषोत्तमदास केडिया
(व्यवस्थापक)

श्रीनन्दलाल माथुर

GITA PRESS, GORAKHPUR.
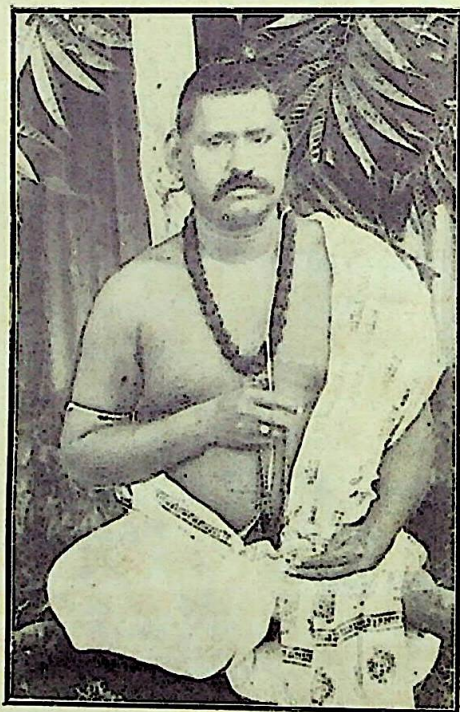
# भक्तिमय चरित्र

जोधपुर राज्यांतर्गत कुचेरा नामक गाँव में भीवानी माथुर कायस्थों का एक घराना पुश्तों से भगवद्भक्त होता आया है। इसी कुटुंब में साकेतवासी लाला श्रीगोपाललालजी बड़े ही धर्मात्मा, सत्पुरुष तथा राम-भक्त हो गए हैं। आप निकटस्थ प्रांत में सिद्ध माने जाते थे। आपको समग्र तुलसीकृत रामचरित-मानस कंठस्थ था।

एक बार आप तीर्थ-यात्रा करते-करते अयोध्या पहुँचे। वहाँ एक अद्भुत घटना हुई। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् इस कलियुग में भी कहीं-कहीं अपने भक्तों के लिये कष्ट उठाया करते हैं। श्रीगोपाललालजी रात में सरयू-तट पर सो रहे थे। उस समय इन्हें किसी ने बड़े जोर से पुकारा— 'गोपाल ! उठो, गोपाल ! उठो।' इसपर इन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया। तब एक अद्भुत मूर्ति समीप आकर खड़ी हो गई। उसने इनको हाथ पकड़कर उठाया और अपने साथ ले जाकर ऊपर की ओर थोड़ी दूर पर सुला दिया। इसके अनंतर वह मूर्ति यह कहते हुए अंतर्धान हो गई कि यहाँ सोओ। इधर तो मूर्ति के अदृश्य हो जाने पर इनके मन में आगंतुक के विषय में तर्क-वितर्कों की बाढ़ थी और उधर सरयू में जल की। ये जहाँ पर सोए हुए थे वह स्थान देखते ही देखते जल-मग्न हो गया और उस स्थान से बहुत

ऊपर तक जल चढ़ आया। तब इन्होंने समझा कि आगंतुक और कोई नहीं, स्वयं भगवान् रामचंद्र थे।

इनको मृत्यु के ५ वर्ष पूर्व ही अपने देहावसान का दिन ज्ञात हो गया था। इन्होंने यह बात लोगों को बतला भी दी थी। तदनुसार ये मार्गशीर्ष कृष्णा ११, सं० १९७१ को श्रीरामस्तवराज का पाठ करते हुए राम-धाम पधारे। इनके अंतिम वाक्य ये थे—"राजाधिराज रघुपुंगव रामभद्र, दासोऽहमद्य भवतः शरणागतोस्मि"।

आप बड़े अच्छे कवि थे। आप भगवान् के भक्ति-भाव में विह्वल होकर प्रायः पद लिखा करते थे। आपकी सरस पदावली 'श्रीराम-सुधा-रस' के नाम से आपके सुपुत्र लाला नंदलालजी ने प्रकाशित कराई है। ६००० छंदों में लिखी हुई इनकी एक रामायण अभी तक अप्रकाशित पड़ी है। इनके एक पद की बानगी लीजिए—

राग बिहाग

अब मोपै राम-कृपा कब होय।<br>
भोजन की रुचि जोजन भाजी, नैनन नींद न जोय।<br>
वा बिन मोहिं कछू न सुहावै, लोयन बरसै तोय॥<br>
आगै दौरि-दौरि कर आए, जन-करुनाकर जोय।<br>
मेरी बेर बेर क्यौं कीन्ही यही अँदेसो मोय॥<br>
कै अब वा बिरदहिं तजि बैठे, कै सुख सौं रहे सोय।<br>
कै मेरे अघ देखि डराने, लीन्हौ बदन लुकोय॥

इन बातन बिसवास न आवै समरथ साहिब सोय।
वाके मन की कैसे जानौं निज मन बैठो खोय॥
करुना-सागर करुना कीजै, दीजै सब दुख धोय।
तुम न 'गोपाललाल' की सुनिहौ, और न सुनिहै कोय॥

श्रीगोपाललालजी के चार पुत्र हैं; श्रीनंदलालजी, अमृतलालजी, किशोरीलालजी और देवीलालजी। 'शंकर-शतक' के निर्माता कविवर श्रीनंदलालजी का जन्म आषाढ़ कृष्णा ७, सं० १९४४ वि० को कुचेरा में हुआ था। बाल्य-काल में आवश्यक विद्याध्ययन के साथ-साथ अपने पूज्य पिताजी द्वारा आपको रामचरित-मानस का अभ्यास कराया गया। उन्हींके संसर्ग से आपको कविता से अनुराग भी हो गया। आपकी धर्मशीलता और सर्वप्रियता बचपन से ही प्रकट होने लगी थी। आपने सं० १९५५ से १९७६ तक श्रीगणेशजी की उपासना की। ग्वालंदो तथा कलकत्ते में आप सेठ लोगों के यहाँ मुनीब का काम भी करते थे। आप सच्चे, सरल-स्वभाव और जितेंद्रिय हैं। आपसे मिलनेवाला मनुष्य आपकी सज्जनता देखकर मुग्ध हो जाता है और भेद-बुद्धि भूलकर आपसे अगाध प्रेम करने लगता है।

संवत् १९७५ में आपकी धर्मपत्नी और ४॥ वर्ष के इकलौते पुत्र का चार दिन के अंतर से देहावसान हो गया। तब से आप शिव-भक्ति के रंग में रँग गए। सं० १९७७ में आप कुछ दिन प्रयाग में रहे। वहाँ पर दुग्धाहारी और

सच्चे महात्मा श्रीअघोरानंदजी ब्रह्मचारी के सत्संग ने शिव-भक्ति के रंग पर दूसरा पुट चढ़ा दिया। उन्हीं से आपने मंत्रोपदेश लिया। तब से आप प्रायः जोधपुर में ही निवास करते हैं और परम कारुणिक भगवान् शंकर की भक्ति में मग्न रहते हैं।

संवत् १९७४ में लाला नंदलालजी हरिद्वार पधारे। वहाँ आप रामचरित-मानस की कथा कहा करते थे। एक दिन जब धनुर्भंग का प्रसंग चल रहा था, उसी समय एक तेजस्वी साधु श्रोता-रूप से आए और अत्यंत ध्यान-पूर्वक कथा सुनने लगे। बीच में यदि कोई कुछ बोलता तो वे यह कह उठते—'भाई राम! कथा होने दो।' लालाजी का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ। कथा समाप्त होते ही, इन्होंने बड़ी श्रद्धा के साथ महात्माजी से भोजन करने की प्रार्थना की तो उन्होंने उत्तर दिया कि मैं तो फल-फूल खाता हूँ। इतना कहते न कहते वे अदृश्य हो गए और सब लोग देखते ही रह गए। लोगों का अनुमान है कि वे श्रीहनुमानजी थे।

आप केवल अपने इष्टदेव को प्रसन्न करने के लिये अपने हृदय के भाव कविता द्वारा भी व्यक्त किया करते हैं। 'शंकर-शतक' आपकी एक सरल और सरस कृति है। आपने कुछ फुटकर पद्य भी बनाए हैं। दो-एक उदाहरण लीजिए—

( १ )

उनतें कढ़ी है गंग, इनतें बढ़ी है गंग,
वे हैं जो मुरारी तो पुरारी ये कहावै हैं।
उनके रमा है संग, इनके उमा है अंग,
उतै साँप-सेज, इतै साँप लपटावै हैं॥
नंद-गोद राजै वह, नंद-पीठ राजै यह,
चंद सीस छावै, चंद सीस पै चढ़ावै हैं।
पाप के हरैया हरि, ताप के हरैया हर,
एकु हैं, कहावैं दोय भक्तन कों भावै हैं॥

( २ )

चिदानंद-आसन पै सत्य सिव-सासन पै,
नृत्य करिवे कों सील उत्तम अखारो है।
पूजन-पठन बहु बाजन के वृंद बजैं,
तेरे जस-गीत को संगीत-रस ढारो है॥
नैन-सुर नेह-रस बरसैं सुमन-संघ,
सृष्टि सब अंग मैं उमंग बिसतारो है।
भक्ति ही भवानी प्रेम-रूप तुम प्यारे प्रभु !
'नंद'-मन-मंदिर मैं तांडव तिहारो है॥

आपके अनुज श्री अमृतलालजी एक भावुक कवि हैं। आपकी उत्तम कृति 'अमृत-सतसई' के अमृत-पान का स्वाद अति आनंददायी है। यह ग्रंथ जोधपुर से प्रकाशित हो चुका है। यद्यपि इसका प्रकाशन इसके अनुरूप नहीं हुआ है और न उन लोगों को प्रचार की युक्तियाँ ही

आती हैं, तथापि अब तक इसकी दो आवृत्तियाँ हो चुकी हैं और साहित्य के उद्भट विद्वानों ने इसकी प्रशंसा मुक्त-कंठ से की है। दिग्दर्शन के लिये यहाँ पर उसमेंसे कुछ दोहे उद्धृत किए जाते हैं—

( १ )

सरसति ! बरसिय रस-अमिय, रघुबर-सिय-जस-लीन ।
कृति परवीन कवीन सी, कर नवीन कर-बीन ! ॥

( २ )

तो कर तें हरि-धनु चढ्यौ, उतर्‍यौ मो अभिमान ।
ऐंचि लियौ गुन-साथ ही, मो मन राम सुजान ॥*

( ३ )

हौं कछु कहि जानौं नहीं, सब जानौ सुख-धाम ! ।
दीनन-दुख जानौ नहीं, तो तुम जानौ राम ! ॥†

( ४ )

पितु-पयान सुरपुर सुने, दीनबंधु भे दीन ।
करुना-सागर ह्वै रहे, करुना-सागर-लीन ॥

---

* विष्णु के धनुष को चढ़ा देने के पश्चात् श्रीरामचंद्रजी के प्रति परशुराम की उक्ति ।

† सुमंत की उक्ति ।

श्रीगणेशायनमः

# 'कुमार' के उद्गार

प्रनवौं परम पराक्रमी, पंचानन के पाय।
तनक भनक कानन परत, दुरित-द्विरद दुरि जाय॥

शंकर का स्वरूप

यह तो सर्व-सम्मत है कि सभी देवताओं में ब्रह्मा, विष्णु और महेश श्रेष्ठ हैं, पर इन त्रिमूर्तियों में कौन श्रेष्ठ है, प्रथम किसकी उत्पत्ति हुई और इनका परस्पर क्या संबंध है इत्यादि प्रश्नों के उत्तर न किसी ने दिए हैं और न कोई दे सकता है। इन महाशक्तियों के पूर्वापर भाव का निरूपण करना सर्वथा अशक्य है, क्योंकि इन तीनों में से प्रत्येक तद्व्यतिरिक्त शक्तियों से संवलित होकर श्रेष्ठ है। जैसे, बीज और वृक्ष एक दूसरे के कारण-रूप हैं, पर यह कहना कठिन है कि पहले किसकी उत्पत्ति हुई।

परमात्मा के कल्याणकारी रूप को ही 'शंकर' कहते हैं। भगवान् की स्वरूप-श्रेणी में शंकर-स्वरूप की महिमा अनंत है। यद्यपि वेदों, स्मृतियों और पुराणों में मुक्तकंठ से और अनेक प्रकार से सर्वत्र शंकर की गुणावली गाई गई है, तथापि इनका यथार्थ गुण-गान आज तक कोई नहीं कर सका। ऐसी स्थिति में मेरे ऐसे अबोध व्यक्ति का

कुछ कहना तो बाल-चापल्य ही होगा। यहाँ पर तुलसीदासजी की यह चौपाई भली भाँति घटित होती है—

"जेहि मारुत गिरि-मेरु उड़ाहीं।
कहहु तूल किहिं लेखे माहीं॥"

ये देवों में महादेव हैं, योगियों में महायोगी हैं और करुणा, प्रेम, वैराग्य एवं ज्ञान की मूर्ति हैं। कलि-काल का मल अपहरण करने में ये अपना शानी नहीं रखते। ये आशुतोष हैं, थोड़ा सा प्रेम, थोड़ा सा जप ही इन्हें द्रवीभूत कर देता है। इनके स्वभाव में बालकों के शुद्ध हृदय की सी सरलता और कोमलता भरी हुई है। इनकी दया सीमा रहित है। ये किंचित् प्रसन्न होते ही अदेय वस्तु भी दे डालते हैं, इसीलिये औढरदानी और भोलानाथ कहलाते हैं।

आपमें भोलेपन की हद है। कहीं-कहीं पर तो बिना बिचारे दान दे डालने के कारण आपको पछताना पड़ा है*। रात के समय एक बेल-वृक्ष पर शिकार की घात में बैठे हुए किसी व्याध के हाथ से कुछ पत्तियाँ आपके ऊपर आ गिरीं तो आपने उसका कल्याण कर दिया†। एक चोर चोरी में पकड़े जाने पर इतना पीटा गया कि मर गया और संयोग से उसकी मृत्यु आपके मंदिर के समीप हो गई तो

---

* भस्मासुर की कथा प्रसिद्ध ही है। † शिवरात्रि के संबंध में यह कथा विख्यात ही है।

तत्काल उसको कैलास-वास प्राप्त हो गया †। किसी ने मुँह में पानी भरकर आपकी मूर्ति पर दो-चार कुल्ले कर दिए, बस आप उसकी इसी भक्ति पर मुग्ध हो गए ‡। किसी ने आपके ऊपर पैर रखकर घंटा चुराने का प्रयत्न किया तो आपने उसको शिव-लोक पहुँचा दिया *।

चरित्र का वैषम्य

भूतभावन भगवान् शंकर के चरित्र में जितना वैषम्य है उतना अन्यत्र नहीं। जहाँ आप परम करुणा-सागर शिव-रूप हैं, वहाँ आप भयंकर रुद्र-रूप भी हैं। जहाँ आप विरूप और गुणहीन हैं, वहाँ आप रूप-राशि और सगुण भी हैं। जहाँ आप संकल्प-विकल्प-विहीन हैं, वहाँ आप संकल्प-विकल्प-संपन्न भी हैं। आप भव होते हुए भव-भक्षी हैं। त्रिपुरांतक होते हुए त्रिपुर-तोषक हैं। पशुपति होते हुए पशुता-नाशक हैं। त्रिशूल-प्रिय होते हुए त्रिशूल-त्रासक हैं। आप अति अमंगलवेश होते हुए सर्व-मंगला के प्रियतम और महामंगलकारी हैं। आपका घर कैलास, आधा अंग हिम-गिरि-सुता, जटा में गंगा और सिर पर शीत-कर चंद्र के होते हुए भी आप अहर्निशि तपते रहते

---

† यह कथा विद्येश्वर-संहिता में है। ‡ महाकाल नामक व्याध की यह कथा केदार खंड में है। * यह गुणनिधि ब्राह्मण की कथा है। इसके विषय में 'विनय-पत्रिका' में लिखा है—"कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज। ह्वै प्रसन्न दीन्हेउ सिव पद निज॥"

हैं। आप वामदेव हैं, किंतु अनुकूल रहते हैं। भूत-नाथ हैं, किंतु पंचभूतों के प्रपंच को भगाते हैं। आप संगीत और नृत्य-कला के आदि आचार्य हैं, किंतु आपके यहाँ नित्य ही वेताल-नृत्य हुआ करता है। आपने तांडव-नृत्य के समय डमरू-नाद से सातों सुर आविर्भूत किए, किंतु आप सुर-शत्रु असुरों को वर देते हैं। आपका न आदि है न अंत और आप जगत् के आदि और अंत भी हैं। आप प्रकृति से परे हैं और प्रकृति ही आपकी प्यारी अर्द्धांगिनी है। आप सभी विद्याओं और कलाओं में दक्ष हैं और दक्षता का विनाश करनेवाले हैं। आपने अग्नि और जल, विष और अमृत को धारण किया है। आप सृष्टि का सृजन तथा लालन-पालन भी करते हैं और सुनते हैं कि आप उसके संहारक भी बन जाते हैं। आप हैं तो भिक्षुक, पर समृद्धिदायी हैं। हैं तो श्मशान-वासी, पर भक्त का श्मशान-संबंध नष्ट करते हैं। आप भोगियों को तो लिपटाते हैं, पर कहलाते हैं योगिराज। इधर तो आप विभूति-प्रिय हैं और उधर विभूति लुटाते भी हैं। इधर तो आप दिगंबर हैं और उधर संसार भर के सूत्रधार भी हैं। इधर तो आप महायोगेश्वर हैं और उधर अर्द्धनारीश्वर भी हैं। इधर तो आपके उदरस्थ कोटि ब्रह्मांडों की स्थिति है और उधर आपकी स्थिति एक-एक रेणु-कण में है। आपके वैषम्य भाव के विषय में देखिए संस्कृत के एक कवि ने क्या कहा है—

"पिनाकफणिबालेन्दुभस्ममंदाकिनीयुता ।
पवर्गरचिता मूर्तिरपवर्गप्रदायिनी ॥"

संपूर्ण ऐश्वर्य और समृद्धि की अधिष्ठात्री आपकी अर्द्धांगिनी जगदंबा के विषय में मैं और कुछ कहना नहीं चाहता, पर इतना सुना है कि वह गौरी भी है और काली भी । आपकी दूसरी प्रिया है गंगा, उसमें मज्जन करनेवाले सज्जन को वह सकल समृद्धियों से विमुख करके नंगा बना देती है । आपकी राजधानी भी विचित्र है । कहने को तो उसे आनंदवन कहते हैं, पर वस्तुतः वह संसार के संपूर्ण आनंद को धूल में मिला देती है और भव-भक्त को अभव-पद पर पहुँचाती है। वहाँ पर खरे-खोटे की परख ही नहीं है। पापी मरे तो मोक्ष ! चींटी मरे तो मोक्ष !। वाह रे अवधूत ! तेरी नगरी भी तेरे अनुकूल ही है—

"एक दिएँ जहँ कोटिक होत हैं सो कुरुखेत मैं जाइ अन्हाइय ।
तीरथराज प्रयाग बड़े मनवांछित के फल पाइ अघाइय ॥
श्रीमथुरा बसि 'केशवदासजू' द्वैभुज तें भुजचार ह्वै जाइय ।
कासीपुरी की कुरीति बुरी जहँ देह दिएँ पुनि देह न पाइय ॥"

आपकी वेष-भूषा, रहन-सहन, निवास, कुटुंबियों और वाहनों में जो-जो विचित्रताएँ और वैषम्य हैं उनका वर्णन करने बैठें तो एक पोथा तैयार हो सकता है । किसकी शक्ति है कि आपकी अद्भुत और अगम्य लीलाओं का वर्णन कर सके ।

शंकर की भक्ति

मन की चंचलता हाथी के कान और पीपल के पत्ते से भी अधिक है। शरीर में नेत्र, कर्ण, नासिका, त्वचा और जिह्वा प्रकारांतर से आकर्षण के केंद्र हैं और मन इन सबका केंद्र है। यही जीव को मर्कट की तरह तरह-तरह के नाच नचाता है। मन को चांचल्य-विहीन करना परमावश्यक है। जब तक मन स्थिर नहीं होता तब तक मनुष्य कल्याण-मार्ग पर नहीं पहुँच सकता। इस मायावृत संसार में मन को निश्चल करने के लिये उस माया-पति की भक्ति ही उत्तम और सुगम उपाय है। भक्ति से ही इहलौकिक और पारलौकिक सुखों की प्राप्ति होती है। विशेषतः इस घोर कलि-काल में नवधा-भक्ति ही भव-सागर से तारने के लिये नौका-रूप है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि अनेक मनोविकार-रूपी तूल-राशि को भस्म करने के लिये भक्ति एक जाज्वल्यमान चिनगारी है। जब वे भस्म हो जाते हैं, तब यह जीवात्मा निज रूप को प्राप्त होकर परम ज्योति से प्रतिबिंबित होता है; और भक्त का हृदय-कमल भगवान् का शयनागार बन जाता है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है—

"त्वं भक्तियोगपरिभावितहृत्सरोजे
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ ! पुंसाम्।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥"

अब यह प्रश्न उठता है कि भक्ति किस देवता की सद्यः फलदायिनी है। यों तो परमात्मा के सभी रूप इकसार हैं, परंतु भोले-भंडारी तो बहुत ही शीघ्र संतुष्ट हो जाते हैं। जब उपासक के हृदय में इनकी अनन्य भक्ति का बीजारोपण हो जाता है तब तो कहना ही क्या है। उसको तुरंत ही चारों फलों की प्राप्ति होती है। जब कोई सौदा लेने बाजार में जाता है तो वह सोचता है कि किसके यहाँ चीज अच्छी और सस्ती मिलेगी। यह विचारकर वह किसी भोले-भाले दुकानदार के यहाँ जाता है। यही बात भक्तों की भी है। उनका मन प्रायः इन्हीं की ओर झुकता है। है भी बात ठीक; भोले बाबा के यहाँ सौदा सस्ते में ही पटता है—

"देव-नर-किन्नर कितेक गुन गावत पै,
पावत न पार जा अनंत गुन-पूरे को।
कहै 'पदमाकर' सुगाल के बजावत ही,
काज करि देत जन-जाचक जरूरे को॥
चंद की छटान-जुत पन्नग-फटान जुत,
मुकुट बिराजै जटा-जूटन के जूरे को।
देखौ त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ,
पैये फल चार फूल एक दै धतूरे को॥"

हिंदी में एक प्रकार से शिव-साहित्य का अभाव है। इस अभाव की पूर्ति शिव-संबंधी अप्रकाशित हिंदी-ग्रंथों के प्रकाशित होने और संस्कृत-ग्रंथों के आधार पर नये ग्रंथ प्रस्तुत करने से हो सकती है। इस ओर

परम शैव श्रद्धास्पद श्रीयुत बाबू गौरीशंकरजी गनेड़ीवाला का ध्यान गया है। वे सस्ते मूल्य में प्रचार के उद्देश्य से स्वयं लिखकर शिव-साहित्य का प्रकाशन कर रहे हैं। उनकी भक्ति-ग्रंथ-माला के आठ सुरम्य पुष्पों की मधुर सुरभि से भक्त-भ्रमर आनंदित हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त हाल में ही सुप्रसिद्ध 'कल्याण' पत्र का 'शिवांक' निकला है। यह शिव-संबंधी साहित्य का खजाना है। इसको इतना लोकोपयोगी बनाने के लिये इसके संपादक आदर्श-चरित श्रीयुत हनुमानप्रसादजी पोद्दार को जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है।

प्रस्तुत प्रसंग

मारवाड़ के साहित्य-समुद्र की सैर जिन सज्जनों ने न्याय की नौका पर बैठकर की है; उन्हीं को उसकी अगाधता, गंभीरता और सुंदरता का पता होगा। अनेक उच्च कोटि के ग्रंथ-रत्न उसके अंतस्तल में पड़े-पड़े जगमगा रहे हैं। वहाँ के साहित्यिक समाज में अब तक वही पुराना ढंग चला आरहा है। न तो वहाँ के कविवर ही अपनी रचनाओं को प्रकाश में लाने का उद्योग करते हैं और न साहित्य-रसिक-समुदाय ही। यही कारण है कि वहाँ का सुंदर साहित्य योंही अँधेरे में पड़ा हुआ है।

मारवाड़ में जोधपुर प्राचीन साहित्य का एक खास केंद्र है। पिछले दिनों मुझे जोधपुर जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वहाँ पर डिंगल और व्रज-भाषा के अनेक

सरस कवियों से भेंट हुई। इन जीती-जागती साहित्य-मूर्तियों से वार्तालाप कर मुझे अतीव आनंद का अनुभव हुआ। अनेक अप्रकाशित ग्रंथ-रत्न दृष्टि-गोचर हुए। मुझे बारहठ-बोर्डिंग-हाउस में डिंगल के कई ग्रंथ मिले। कुछ ग्रंथ प्रकाशित भी हो चुके हैं, पर पुराने ढंग से। मुझे विश्वास है कि यदि इन प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रंथों को आधुनिक ढंग से योग्य संपादकों और प्रकाशकों द्वारा प्रकाश में लाया जाय तो साहित्य-क्षेत्र की सुंदर वृद्धि होगी और साहित्य-रसिकों को इस नई कहिए या पुरानी सामग्री को पाकर पूर्ण संतोष होगा।

वहीं पर कविवर श्रीयुत अमृतलालजी माथुर से मेरा परिचय हुआ। आप बड़े मिलनसार हैं। आपसे मिलकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। आप व्रज-भाषा में बहुत ही सुंदर रचना करते हैं। आपने कई काव्य-ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें से 'अमृत-सतसई' आपकी अमर कृति है। वह रामायण-विषयक ७०० दोहों का अपूर्व ग्रंथ है। यह 'शंकर-शतक' भी मुझे अमृतलालजी से प्राप्त हुआ। यह इन्हीं के बड़े भाई कविवर श्रीनंदलालजी माथुर की रचना है।

'शंकर-शतक' के सभी दोहे भक्ति-भाव से भरे हुए हैं और इसकी वर्णन-शैली नितांत स्वाभाविक है। भावुक काव्य-रसिकों को इस पुस्तक में विहारी और रहीम की-सी ऊँची-उड़ान भले ही न मिले, किंतु भक्ति-भाव के भूखे भगवान् भोलानाथ और

उनके भक्तों के लिये इसमें पर्याप्त सामग्री है। सुकवि श्रीनंदलालजी में भावुकता की कमी नहीं है; पर यहाँ उनका ध्येय रसिकों को रिझाना नहीं, वरन् प्रभु को प्रसन्न करना है। भला आर्तजन की गद्गद वाणी में काव्य-चातुरी से क्या प्रयोजन! सच तो यह है कि भक्ति-रस के सामने संसार के सभी रस फीके हैं। कविवर 'पूर्णजी' ने ठीक ही कहा है—

"रस है मधु मैं कौनसो, किती रसीली ऊख।
कहा चलाई दाख की, फीको जहाँ पियूख?
फीको जहाँ पियूख, राग सब लागैं सीठे।
लगैं निपट बिन स्वाद, पदारथ जग के मीठे॥
'पूरन' कहत सुनाइ न मानौ तो कह बस है।
प्रभु-प्रसंग सम सुरस नहीं कहुँ दूजो रस है॥"

प्रभु के पास भक्त-हृदय के सच्चे और सरल उद्गार ही सीधे पहुँच सकते हैं। जैसा कि कवि ने स्वयं कहा है—

"कविताई सौं काज नहिं, 'नंद' सुधाई सार।
भोरे भावनि रीझिहै, वह भोरो रिझवार॥"

'शतक' के सभी दोहे प्रसाद-गुण-पूर्ण हैं। प्रसाद-गुण ही काव्य के महत्त्व को बढ़ाता है। किसी कवि ने कहा भी है—

"चेतः प्रसादजननं विबुधोत्तमाना-
मानन्दि सर्वरसयुक्तमतिप्रसन्नम्।
काव्यं खलस्य न करोति हृदि प्रतिष्ठां
पीयूषपानमिव वक्र विवर्ति राहोः॥"

कवि भले ही न चाहे, किंतु फिर भी उसकी प्रतिभा

छिप नहीं सकती। वह बरबस अपना चमत्कार दिखला ही देती है। इस पुस्तक में भी कहीं-कहीं इतने मधुर-भाव आ गए हैं कि उन्हें पढ़कर कवि-हृदय अवश्य आनंद-विभोर हो उठेगा। उदाहरणार्थ कुछ दोहे दिए जाते हैं—

"मानसरोवर पेम-रस, मनवा भयौ मराल।
'नंद' सदासिव-नाम की, सुख मुक्ता की माल॥"

यहाँ भक्ति-रस के मानसरोवर में मन-रूपी राजहंस शिव-नाम-रूपी मोतियों को चुग रहा है। कैसा सरस भाव है! समीचीन उपमाओं ने दोहे में जान डाल दी है।

"लखि गाहक गिरिजेस सो, लई मया-मनि-माल।
वेचि दियौ मन-माल निज, बिन दलाल 'नँदलाल'॥"

इसमें भक्त ने गिरिजेश सा संपत्तिशाली ग्राहक पाकर उनसे दया-रूपी रत्न-माल के विनिमय में अपना मन-रूपी माल दे दिया। कैसा अच्छा सौदा पटा और वह भी बिना दलाल के। दलाली भी नहीं देनी पड़ी। कितनी सुंदर कल्पना है।

इसी प्रकार 'शतक' में और भी कितने ही दोहे नवीन भावों से भरे हुए देखने को मिलेंगे। भगवान् भवानीनाथ की भक्ति के भावावेश में कहीं-कहीं तो कवि ने बहुत ही निर्भीकता से अपने भाव व्यक्त किए हैं—

"भोरी चितवन सौं चितै, रंचक गौरी-नाह।
मोकों इंद नरिंद की, 'नंद' नहीं परवाह॥"

इसमें सभी दोहे अलंकारों से अलंकृत हैं। सुभीते के

लिये मैंने उनका टिप्पणी में निर्देश कर दिया है। अनुप्रास अलंकार प्रत्येक दोहे में है, अतः उसे नहीं लिखा।

उपसंहार

प्रस्तुत पुस्तक में बहुत सी त्रुटियाँ होंगी, किंतु इसमें आनंद-वन-विहारी भगवान् शंकर का गुण-गान किया गया है, इसलिये मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस एक ही गुण के कारण सहृदय-सज्जन-समूह को यह उसी प्रकार रुचिकर प्रतीत होगी जिस प्रकार ग्रहण के पर्व पर काशीपुरी में गंगा-स्नान। ग्रहण के मेले पर काशी में जन-समूह को बहुत कुछ सहिष्णुता से काम लेना पड़ता है; फिर भी लाखों व्यक्ति स्नानार्थ एकत्र होते हैं और भव-भय-नाशिनी श्रीभागीरथी में गोता लगाते ही सारे कष्टों को धो बहाते हैं। अस्तु, त्रुटियों के विषय में इतना ही निवेदन कर देना अलं होगा कि यह प्रणेता, संपादक और प्रकाशक तीनों का सर्व-प्रथम प्रयास है, इसलिये हम लोग क्षमा के पूर्ण अधिकारी हैं।

इस पुस्तक के संपादन में श्रद्धेय श्रीयुत पं० विश्वनाथ-प्रसादजी मिश्र बी०ए०, 'साहित्य-रत्न' ने अपने सत्परामर्श द्वारा मुझे जो सहायता दी है, उसके लिये मैं उनका विशेष आभारी हूँ।

ऋषि-पंचमी सं० १९९०
भारती-भूषण-कार्यालय, काशी।

—शिवकुमार केडिया
'कुमार'

श्री

# शंकर-शतक

## मंगलाचरण

दोहा

( १ )

गंग जटा, ससि सीस पै,
गरै गरल, अहि-माल।
कर डमरू, बाहन बरद,
सो सुमिरत 'नँदलाल'॥

---

( १ ) अलंकार—स्वभावोक्ति।

## महा महिमा

( २ )

जग-रचना - पालन - प्रलय,
प्रकृति - पुरुस - गुन - ग्राम।
'नंद' काम-रिपु को सवै,
यह कटाच्छ को काम ॥

( ३ )

अप्रमेय अविकार अज,
सास्वत 'नंद' अखंड।
व्यापक सब आकास मैं,
चिदाकास प्रभु चंड ॥

( ४ )

वेद थके, हरि विधि थके,
'नंद' थके सब लोय।
पारवती के कंत को,
पार न पायौ कोय ॥

---

( २ ) ग्राम=समूह। अलं०—कारक दीपक, द्वितीय विभावना और यमक ( काम )।

( ३ ) अप्रमेय=अपार। शाश्वत=नित्य।

( ४ ) अलं०—असंबंधातिशयोक्ति, पदार्थावृत्ति दीपक और यमक ( पार )।

( ५ )

मुंड-माल, अहि-माल, बिस,
भूति भूत - गन जोइ।
'नंद'-नाथ धारत तिते,
दूसन भूसन होइ॥

( ६ )

'नंद' न जम की भीति रखि,
रखि संकर सौं रंग।
उलटो डाँटत गरुड़ कों,
जा गर पर्यौ भुजंग॥

( ७ )

पावक लसै ललाट मैं,
जटा - जूट मैं गंग।
'नंद' - नाथ - दरवार मैं,
भोग जोग इक संग॥

---

( ५ ) भूति=भस्म। अलं०-प्रथम उल्लास।
( ६ ) रंग=प्रेम। अलं०-काव्यलिंग (समस्त में), पदार्थावृत्ति-दीपक (रखि) और जाति का क्रिया से विरोध (उत्तरार्द्ध में)।
( ७ ) अलं०—द्रव्य से द्रव्य का और गुण से गुण का विरोध।

( ८ )

आठ सिद्धि, नव निधि महा,
सब चाहै संसार ।
'नंद'-नाथ-दरबार की,
बार-बुहारनहार ॥

( ९ )

राज दरब संपति सरब,
इनको आवै अंत ।
'नंद' अचल यह संपति,
पारबती को कंत ॥

## अनंत उदारता

( १० )

आप हलाहल पान करि,
सुधा सुरन कौं देत ।
बार-बार दरबार के,
'नंद' बारना लेत ॥

---

( ८ ) अलं०—प्रथम उदात्त और यमक ( बार, हार ) ।
( ९ ) अलं०—परिकर (पारबती को कंत) से पुष्ट व्यतिरेक ।
( १० ) अलं०—यमक ( बार ) ।

( ११ )

देत सुधा सी संपदा,
आक धतूरा खाहिं।
ऐसे भोलेनाथ कों,
''नंद' बिसारत नाहिं॥

( १२ )

'क-अंक बिधि - कर लिखे,
देत तिनहुँ निधि भूरि।
वहै चंद-आभरन की,
'नंद' चरन की धूरि॥

( १३ )

हँसिबो जाको कल्पतरु,
दया - दीठि सुर - धेनु।
वहै चंद - आभरन की,
'नंद' चरन की रेनु॥

---

( ११ ) अलं०—विरोध ( जाति से जाति का ) और परिकरांकुर ( भोलेनाथ )।

( १२ ) अलं०—निरंग रूपक ( पूर्वार्द्ध में )।

( १४ )

'नंद' नाथ करि काम कौं,
नहिं चाहत जग नाम।
सदा करत कल्यान ही,
तऊ कहावत वाम॥

( १५ )

'नंद' न भोरे-भवन तें,
कोरे लौटत लोग।
भोगी पावैं संपदा,
जोगी पावैं जोग॥

( १६ )

'नंद' सरीखे दास सौं,
नाथ निबाहत हेत।
आक धतूरा लेत त्यौं,
करवे अवगुन लेत॥

---

( १४ ) अलं०—काव्यलिंग और श्लेषानुप्राणित विशेषोक्ति ( उत्तरार्द्ध में )।

( १५ ) अलं०—पदार्थावृत्ति-दीपक ( पावैं )।

( १६ ) अलं०—काव्यलिंग।

# अमित अनुग्रह

( १७ )

बेगि मया जन पै करत,<br>
छन मैं करत निहाल।<br>
वा संकर गिरिजेस को,<br>
किंकर है 'नँदलाल' ॥

( १८ )

करत मया सुख-कंद भव,<br>
हरत सकल दुख-फंद।<br>
वा जग-वंद-प्रसाद तें,<br>
'नंद' करै आनंद ॥

( १९ )

लखि गाहक गिरिजेस सो,<br>
लई मया-मनि-माल।<br>
बेचि दियौ मन-माल निज,<br>
विन दलाल 'नँदलाल' ॥

---

( १७ ) अलं०—पदार्थावृत्ति-दीपक (करत)।

( १८ ) अलं०—प्रथम हेतु और यमक ( नंद )।

( १९ ) अलं०—अधिक अभेद रूपक और यमक (माल, नँदलाल )।

( २० )

कविताई सौं काज नहिं,
'नंद' सुधाई सार।
भोरे भावनि रीझिहै,
यह भोरो रिझवार॥

## भीति-भंजकता

( २१ )

बाघ-वरद, पीयूस-विस,
अहि-मयूर को मेल।
'नंद' सदासिव सामुहें,
अभय भयौ तू खेल॥

( २२ )

या सागर-संसार को,
'नंद' नहीं भय मान।
पार करैया यह खरो,
पारवती को प्रान॥

---

( २० ) अलं०—काव्यलिंग।
( २१ ) अलं०—काव्यलिंग और विरोध-माला ( जाति से जाति की )।
( २२ ) अलं०—सावयव रूपक और यमक ( पार )।

( २३ )

नहीं खुसामद काहु की,
भय काहू को है न।
'नंद' जु मया त्रिनैन की,
चैन करौ दिन-रैन॥

( २४ )

नहिं साधन, विद्या न कछु,
नहिं कछु संपति-कोस।
'नंद' सदा निरभय रहै,
भोलानाथ - भरोस॥

( २५ )

परम अभय-पद देतहैं,
'नंद'-नाथ गिरि-नाथ।
धरको कैसो काल को ?
हर को ऊपर हाथ॥

( २४ ) अलं०-प्रथम विशेषोक्ति।

## मुख्यता-मंडन

( २६ )

राम रहीम जिनंद बुध,
'नंद' अनेक प्रकार ।
नाम-रूप के भेद तैं,
सिव सेवत संसार ॥

( २७ )

'नंद'-नाथ भोरो तऊ,
सब चतुरन कों भाय ।
भजैं चतुरभुज भाव सौं,
नवैं चतुरमुख आय ॥

( २८ )

नाग सुरासर नर भजैं,
भजैं चराचर जाहि ।
भजैं चतुरभुज, चतुरमुख,
'नंद' भजै क्यौं नाहिं ? ॥

---

( २७ ) अलं०—श्लेषानुप्राणित काव्यलिंग और गुण का क्रिया से विरोध ।

( २८ ) अलं०—पदार्थावृत्ति-दीपक ।

( २९ )

तुही ब्रह्म, माया तुही,
तुही जीव सिव ! आहि ।
'नंद' नाथ ! जो तू नहीं,
सो कितहूँ कछु नाहिं ॥

( ३० )

बाल बचायौ काल सौं,
हर आड़ो दै हाथ ।
महाकाल है काल को,
'नंदलाल' को नाथ ॥

## दिव्य दर्शन

( ३१ )

मिटै पियास पियूस की,
जचैं सुरग-सुख छार ।
बिबुध-वंद सिर-चंद को,
'नंद' देखि दरबार ॥

---

( २९ ) अलं०—द्वितीय विशेष ।
( ३० ) बाल=मार्कंडेय ऋषि । अलं०—काव्यलिंग ।
( ३१ ) अलं०—परिकर ( बिबुध-वंद ) और परिकरांकुर ( सिर-चंद ) ।

( ३२ )

'नंद' न लोचन-नलिन जे,
लख्यौ त्रिलोचन चाहि।
बिधि कों उनके रचन की,
मिली मजूरी नाहिं॥

( ३३ )

सो तिथि धन, धन वार सो,
धन सुघरीं सुख-ऐन।
'नंद' जबै आनंद भरि,
निरखै नैन त्रिनैन॥

( ३४ )

नील पयोधर पेखिकै,
नीलकंठ हरसाइ।
'नंद' भरै आनंद जब,
नीलकंठ दरसाइ॥

---

( ३२ ) अलं०—निरंग रूपक और प्रथम पर्यायोक्ति।

( ३३ ) ऐन=स्थान। अलं०—पदार्थावृत्ति-दीपक (धन) और यमक ( नंद )।

( ३४ ) पयोधर=मेघ। नीलकंठ=मयूर और महेश। अलं०—यमक ( नीलकंठ, नंद) और प्रतिवस्तूपमा।

# अर्चा का आनंद

( ३५ )

'नंद यहै दिल देहरा,
प्रेम पुजारी होइ।
सब देवन के देव की,
सेव करौ सब कोइ॥

( ३६ )

जामैं हर-मंदिर नहीं,
नहिं अरचा-आनंद।
सो धरनी पर नरक है,
नगर न जानौ 'नंद'॥

( ३७ )

ईस-चरन जो धन चढ़ै,
'नंद' सु धन धन जान।
नहिं भव कों, भव-भगत कों,
सो धन धूरि समान॥

---

( ३५ ) अलं०—समस्त-वस्तु-विवर्ति सावयव सम अभेद रूपक।
( ३६ ) अलं०—शुद्धापह्नुति।
( ३७ ) अलं०—पूर्वार्द्ध में विधि और उत्तरार्द्ध में लुप्तोपमा ( धर्मलुप्ता )।

( ३८ )

'नंद' सदासिव-सेव की,
अहो! अपूरव बात।
नीर चढ़त या नाथ पै,
जन-पातक बहि जात॥

## ध्यान-धारण

( ३९ )

लगत छनक साँची लगन,
जगत भगति की जोत।
हरि-वंदित हर-ध्यान धरि,
'नंद' अनंदित होत॥

( ४० )

'नंद' परत हैं प्रान ये,
तब ही लगि जम-हाथ।
उर-बासी कीन्हौ नहीं,
जब लगि कासीनाथ॥

( ३८ ) अलं०—प्रथम असंगति ( उत्तरार्द्ध में )।
( ३९ ) अलं०—निरंग रूपक और प्रथम हेतु।

# नाम-निष्ठा

( ४१ )

प्रगट होइ आनंद-घन,
निकट न आवै पाप।
जहाँ 'नंद' पल-पल जपै,
सिव-सिव-सिव को जाप ॥

( ४२ )

या असार संसार मैं,
सार यही सुख-कंद।
सिव-सिव-सिव मंतर महा,
रटौ निरंतर 'नंद' ॥

( ४३ )

सब साधन को सार है,
सब ज्ञानन को गेह।
सिव-सिव-सिव या नाम सौं,
'नंद' करौ नित नेह ॥

( ४१ ) अलं०—निरंग रूपक, प्रथम हेतु और वीप्सा।
( ४२ ) अलं०—वीप्सा।
( ४३ ) अलं०—द्वितीय उल्लेख और वीप्सा।

( ४४ )

भव-भुअंग लगि अंग सौं,
जो विस-भर्‍यौ करूर।
'नंद' सदासिव-नाम को,
जाप - सँजीवन - मूर ॥

( ४५ )

मान सरोवर पेम - रस,
मनवा भयौ मराल।
'नंद' सदासिव-नाम की,
मुख मुकता की माल ॥

( ४६ )

ईस - नाम जामैं नहीं,
'नंद' नहीं हित - लोक।
सो सिलोक नहिं, सोक है,
वृथा करत कविलोक ॥

---

( ४४ ) भुअंग=सर्प। अलं०—एक-देश-विवर्ति सावयव सम अभेद रूपक और यमक ( अंग )।

( ४५ ) अलं०—समस्त-वस्तु-विवर्ति सावयव सम अभेद रूपक।

( ४६ ) सिलोक, श्लोक=पद्य। अलं०—विनोक्ति (अशोभन की)।

( ४७ )

'नंद' पाइ नर-तन भलो,
जो न जपै सिव-जाप ।
दोस नहीं वा दीन को,
आड़े पूरब - पाप ॥

## भजन-भाव

( ४८ )

'नंद' भवानी - नाथ को,
जा घर भजन सुभाय ।
निकट होइ निकसै नहीं,
जम परवारो जाय ॥

( ४६ )

जाको भव के भजन मैं,
नहिं अनुराग अमंद ।
देह-भार धरि खर चरै,
सो नर नाहिन 'नंद' ॥

---

( ४८ ) परवारो=वरकर, दूरसे ही । अलं०—प्रथम हेतु ।
( ४९ ) अलं०—शुद्धापह्नुति ।

( ५० )

जोरन कौं जग संपदा,
तोरन कौं भव-फंद।
ईस-अराधन सारिखो,
नाहिन साधन 'नंद'॥

( ५१ )

आगम निगम पुरान को,
यह निसचै निरधार।
'नंद' अराधन ईस को,
सब साधन को सार॥

( ५२ )

'नंद' उहै जन जानियौ,
मुखिया मूढ़न माहिं।
चहै सदा सिव-संपदा,
भजै सदासिव नाहिं॥

---

( ५० ) अलं०-लुप्तोपमा ( उपमानलुप्ता )।
( ५१ ) अलं०-शब्द-प्रमाण।
( ५२ ) शिव-संपदा=कल्याणकारी संपदा। अलं०—यमक।

( ५३ )

जा जन मैं भव-भजन को,
'नंद' नहीं लवलेस ।
जननी ताकों जनम दै,
कोरो सह्यौ कलेस ॥

( ५४ )

'नंद' कहा वह कलपतरु,
सिव - सेवन सौं दूर ।
ईस आप हित सौं गहैं,
धन-धन तुही धतूर ! ॥

( ५५ )

जंतर मंतर तंतरहु,
'नंद' वृथा ये बोध ।
ईस - अराधन होइ कछु,
सो साधन तू सोध ॥

---

( ५३ ) अलं०—प्रथम पर्यायोक्ति और यमक ( जन ) ।

( ५४ ) अलं०—व्यतिरेक गर्भित सारूप्य-निबंधना अप्रस्तुत-प्रशंसा( अन्योक्ति ) और वीप्सा ।

( ५६ )

जा दिन हित सौं नहिं कियौ,
देव - देव को सेव।
हे बिधि! सो दिन 'नंद' को,
मति गिनती मैं लेव॥

( ५७ )

'नंद' - नाथ - दरबार मैं,
लूट होति दिन - रात।
जैसी जाकी बंदगी,
तैसो आवत हात॥

( ५८ )

जोगेस्वर जग को पती,
जगदंबा को कंत।
'नंद' भूति - भूखन भजौ,
भोरो सो भगवंत॥

---

( ५६ ) अलं०—प्रथम पर्यायोक्ति।
( ५७ ) अलं०—द्वितीय सम ( उत्तरार्द्ध में )।

( ५९ )

वेद - बचन वे जानियौ,
जे हर - गुन के छंद ।
निरगुन कविता होति है,
नर - गुन गाएँ 'नंद' ॥

( ६० )

जिन पहिले पातक किए,
फिर सेयौ भगवंत ।
'नंद' खुले वा नरक के,
ताला लगे तुरंत ॥

## स्नेह-सुधा

( ६१ )

दादुर लौं उर 'नंद' के,
छन - छन होत हुलास ।
संभु - सुधा - घन नेह - रस,
बरसत बारह मास ॥

---

( ५९ ) अलं०-उभय पर्यवसायी व्यतिरेक ।
( ६० ) अलं०-यथासंख्य ।
( ६१ ) अलं०-अधिक अभेद रूपक ।

( ६२ )

देह - गेह, दिल को दिया,
सदगुन - वाती होत।
'नंद' जु संभु - सनेह सौं,
जगै निरंतर जोत॥

( ६३ )

अति अथाह रस नेह को,
संकर आप समंद।
तामैं निज मन मीन करि,
'नंद' करौ आनंद॥

( ६४ )

मिटै महामल जीव के,
प्रगटै परमानंद।
सिव - सनेह - सरवर भर्यौ,
नित उठ न्हाऔ 'नंद'॥

---

( ६२ ) अलं०—श्लेष ( सनेह ) से पुष्ट समस्त-वस्तु-विवर्ति सावयव सम अभेद रूपक।
( ६३ ) अलं०—समस्त-वस्तु-विवर्ति सावयव सम अभेद रूपक।
( ६४ ) अलं०—श्लेष से पुष्ट एक-देश-विवर्ति सावयव रूपक।

( ६५ )

प्रेम - बगीचा संभु को,
सुमन सुवास सुचैन।
सींचत रहै सनेह - रस,
'नंदलाल' के नैन ॥

( ६६ )

सिख-सोना सोनार - गुरु,
सुमति - मूस, रुचि - आग।
अमल करत है 'नंद' यौं,
संकर - नेह - सुहाग ॥

( ६७ )

पेम - सरोवर हद भर्‌यौ,
'नंद' रसिक - जन - हेत।
संकर - चरन - सरोज को,
मन - मधुकर रस लेत ॥

---

( ६५ ) अलं०—श्लेष ( सुमन ) गर्भित एक-देश-विवर्ति सावयव रूपक।

( ६६ ) सिख=शिष्य। मूस, मूपा=घरिया, सुवर्ण इत्यादि धातु गलाने का पात्र। अलं०—समस्त-वस्तु-विवर्ति सांगरूपक।

( ६७ ) मधुकर=भ्रमर। अलं०—समस्त-वस्तु-विवर्ति सावयव रूपक।

( ६८ )

'नंद' रहै आनंद सौं,
पियत पेम - रस - सार ।
पारवती - पति - बार पै,
बार - बार बलिहार ॥

( ६९ )

'नंद' सफल संसार है,
प्रेम प्रभू को जाहि ।
ईस - भजन जिन नहिं कियौ,
बृथा जियौ जग माहिं ॥

( ७० )

'नंद' ईस - दरबार मैं,
पियत प्रेम - रस - भंग ।
छके रहैं आनंद मैं,
अंग - अंग रुचि रंग ॥

---

( ६८ ) बार पै=दरवाजे पर, पोली पर । अलं०—निरंग रूपक और यमक ( बार ) ।
( ७० ) अलं०—निरंग रूपक ।

( ७१ )

संकर - भंग - सनेह की,
'नंद' पियै जो आइ।
चलतो देखै जगत कौं,
आप अचल ह्वै जाइ॥

( ७२ )

काहू के घर राज है,
काहू के धन माल।
लगन लिएँ गिरिजेस की,
मगन रहै 'नँदलाल'॥

## स्मरण-सूचन

( ७३ )

जिय-पट पातक-मल लग्यौ,
'नंद' अमल किमि होइ।
सावन सुमिरन संभु को,
नेह - नीर करि धोइ॥

---

( ७१ ) अलं०—अर्थ-श्लेष से पुष्ट सावयव रूपक।
( ७३ ) अलं०—समस्त-वस्तु-विर्वति सावयव सम अभेद रूपक।

( ७४ )

सुमति-डोल, सरधा-सु-रजु,
सुमिरन - रहट सुछंद ।
पेम - कूप सिव - रस-सुधा,
काढ़ि पियौ नित 'नंद' ॥

( ७५ )

'नंद' सुधा - रसु धार उर,
विसया छारहि छार ।
मारहिं मारनहार कौं,
वारहि बार सँभार ॥

## अनन्य अनुरक्ति

( ७६ )

और ठौर बिसराइकै,
'नंद' सुमिर उह ईस ।
घसैं लागि जा चरन सौं,
सकल सुरन के सीस ॥

---

( ७४ ) अलं०-समस्त-वस्तु-विवर्ति सावयव रूपक ।
( ७५ ) अलं०-यमक ( सुधार, मार ) और वीप्सा ( द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में ) ।
( ७६ ) अलं०-काव्यलिंग ।

( ७७ )

'नंद' ईस-पद-पद्म तजि,
 और भजिय अब काहि ?
हरि बिरंचि इंद्रादि सुर,
 जपत रैन-दिन जाहि ॥

( ७८ )

चातक जाचै जलद कों,
 करै न और बिसास।
'नंद' रहै आनंद सौं,
 आसुतोस की आस ॥

( ७९ )

एक लगन लागें दृगन,
 प्रगटै परमानंद।
चित-चकोर जन 'नंद' को,
 सीस चंद सो चंद ॥

---

( ७७ ) अलं०—निरंग रूपक और यमक ( पद ) का एक वाचकानुप्रवेश संकर।
( ७८ ) अलं०—दृष्टांत।
( ७९ ) सो=वह। अलं०—समस्त-वस्तु विवर्ति सावयव रूपक।

( ८० )

'नंद' ईस-दरबार बिन,
और आसरो नाहिं।
कैसे काग जहाज को,
तजि जहाज कों जाहि ? ॥

## भक्त का भरोसा

( ८१ )

मेरो हक क्यौं जाइगो ?
कोटि करौ किन कोइ।
जाको वाहन नंद है,
'नंद' - निबाहन सोइ ॥

( ८२ )

'नंद' बहुत नीकी बनी,
प्रकृति मिली उर-अंत।
हौं भोरो सेवक भयौ,
यह भोरो भगवंत ॥

---

( ८० ) अलं०—प्रतिवस्तूपमा।
( ८१ ) अलं०—काव्यलिंग और यमक ( वाहन, नंद )।
( ८२ ) अलं०—प्रथम सम।

# काशी-कीर्ति

( ८३ )

जगै जान्हवी जोंह्न सी,
'नंद' सदा आनंद।
राका सी कासी दिपै,
चंद सरिस सिरचंद॥

( ८४ )

ईस - दरस, आनंद - रस,
सुरसरि - सेवन 'नंद'।
चलु रे चित! बारानसी,
पग - पग परमानंद॥

( ८५ )

संकर सो साहिब नहीं,
'नंद' हिये तू हेर।
जाके पुर मैं मरत सो,
मरत न दूजी बेर॥

---

( ८३ ) जान्हवी=गंगा। राका=पूर्णिमा की रात्रि। अलं०-उपमा ( सावयवा ) और यमक ( नंद, कासी )।

( ८४ ) अलं०-यमक ( दरस )।

( ८५ ) अलं०-लुप्तोपमा ( उपमान लुप्त ), प्रथम चरण में।

( ८६ )

केवल कासी - बास तें,
चौरासी हरि लेत।
वा दयालु - दरबार तें,
'नंद' हटै किहिं हेत॥

## भक्त के प्रति प्रणति

( ८७ )

बार-बार आनंद भरि,
'नंद' कहै कर जोर।
चंदचूर - जन - पानही,
मो माथे को मोर॥

( ८८ )

संकर - चरन - सरोज को,
जा मन मधुकर आहि।
सो सुजान नागर निपुन,
'नंद' नवै नित ताहि॥

( ८६ ) अलं०—द्वितीय विभावना।
( ८७ ) अलं०—निरंग रूपक।
( ८८ ) अलं०-परंपरित रूपक।

## हरि-हर की एकता

( ८९ )

ईस एक दुइ रूप हैं,
देखहु जिनके दीठ।
एक नंद की गोद मैं,
एक नंद की पीठ॥

## चारु चेतावनी

( ९० )

'नंद' पाइ नर-देह कों,
तू हर के गुन गाइ।
जीवन बीतो जाइ यह,
जनि रीतो रहि जाइ॥

( ९१ )

कठिन काम जब परत है,
जम घेरत जिय आय।
'नंद' नहीं वा समय मैं,
सिव बिन और सहाय॥

---

( ८९ ) नंदबाबा और नंदिकेश्वर। अलं०-काव्यलिंग और यमक।

( ९० ) जीवन=जल और जिंदगी। रीतो, रीता=खाली। अलं०-शब्द-श्लेष और पदार्थावृत्ति दीपक।

( ९२ )

जिन आछे दिन नहिं कियौ,
'नंद' ईस को ध्यान।
वे पाछे पछताइ हैं,
जब जम घेरै आन॥

( ९३ )

जब लगि जन सौं नहिं बनै,
संभु - भजन सुख - कंद।
नहिं निसतारो होत है,
निसचै जानो 'नंद'॥

## अपनी अभिलाषा

( ९४ )

सकल-लोक-अभिराम जो,
राम धरैं उर - ऐन।
कब वाकों आनंद भरि,
'नंद' निहारै नैन॥

---

( ९२ ) अलं०—प्रथम हेतु।
( ९३ ) अलं०—आत्मतुष्टि प्रमाण।
( ९४ ) अलं०—निरंग रूपक और यमक ( राम, नंद )।

( ६५ )

अहो ईस ! ऐसो समय,
कब करिहौ सुख-ऐन ।
जबहि तिहारे रूप कों,
'नंद' निहारै नैन ॥

( ६६ )

बसै महेस - प्रसाद तें,
सदा हिये आनंद ।
झूँठ खुसामद कपट के,
नाहिन गाहक 'नंद' ॥

( ६७ )

भोरी चितवन सौं चितै,
रंचक गौरी - नाह ।
मोकों ईंद नरिंद की,
'नंद' नहीं परवाह ॥

---

( ९१ ) अलं०–प्रथम हेतु ।

( ९८ )

'नंद' नाथ ! निरबाहियौ,
कमठ-अंड सम हेत।
अंड न सुमिरै कमठ कों,
कमठ अंड-सुधि लेत॥

( ९९ )

कासी-पति ! कैलास-पति !,
पसु-पति ! परम दयाल।
पारबती-पति ! जगत-पति !,
'नंद' हिं करौ निहाल॥

( १०० )

मेरो सब संसो हरौ,
करौ कृपा की कोर।
परम पेम-रस उर भरौ,
'नंद' खरो कर जोर॥

---

(९८) अलं०—पूर्णोपमा ( पूर्वार्द्ध में )।

(१००) संसो, संशय=संदेह, भ्रम। अलं०—निरंग रूपक।

# प्रणेता-परिचय

( १०१ )

कायथ माथुर अति सुजन,
हरि - जन श्रीगोपाल ।
संभु-सतक सुखकर कियौ,
तासु नँदन नँदलाल ॥

## कृति-काल

( १०२ )

महि सिधि निधि बिधु बिक्रमी,
संभु - निसा सुख-रास ।
'नंद'-विनय संकर सुनी,
नगर जोधपुर वास ॥
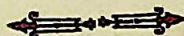
(१०१) अलं०—यमक ( नंद ) ।

(१०२) महि·········बिधु=सं० १९८१ ।

शैव-भारती-भवन" को सादर समर्पित ।

८-१-३३.

मुद्रक—

बजरंगबली गुप्त 'विशारद'

श्रीसीताराम प्रेस, जालिपादेवी, काशी ।